RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-01
January-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी लघुकथाओं में सामाजिक सरोकार

धर्मेन्द्रकुमार एच. राठवा

शोधछात्र, आणंद आर्ट्स कोलेज, आणंद, हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर–388120 जि. आणंद (गुजरात)

साहित्य अपने समाज का आईना है, आलोचना भी । साहित्य अपने समय का सबसे बड़ा दस्तावेज इसीलिए होता है कि उसमें अपने समय के समाज का यथार्थ व्यक्त होता है । कथा–साहित्य गतिशील सामाजिक स्थितियों–परिस्थितियों और घटनाओं की अभिव्यक्ति होती है । इसमें मानवीय सम्बन्धों और विकास की सहज स्वाभाविक प्रक्रिया का अनुचिन्तन अभिव्यंजित होता है । कथा में रचनाकार की अनुभूति का संश्लिष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है तथा चेतना के साथ सापेक्ष प्रवाह के साथ प्राणिमात्र के साथ जुड़े कार्य व्यवहार कलात्मक रूप ग्रहण कर हमारे भीतर संवेदना की एक परत बनाते हैं।

कथा और खासकर लघुकथा में संकीर्ण क्लेवर में सामाजिक परिघटनाएँ तथा भिन्न–भिन्न मनःस्थितियाँ जब कलात्मक संस्पर्श प्राप्त करती हैं तो श्रेष्ठ कथा–सृजन का सुख प्राप्त होता है । लेखक का समाज से जितना गहरा जुड़ाव होगा उसकी रचनाएँ उतनी ही विश्वसनीय, यथार्थपरक और विविधतापूर्ण होंगी । एक कथाकार के लिए तो सामाजिक सचेतनता अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि यहाँ स्वान्तः सुखाय लेखन की तनिक भी गुंजाइश नहीं है । चाहे कहानी हो, उपन्यास या कि लघुकथा सभी में एक तरफ समाज बोलता है तो दूसरी तरफ ये कथारूप समाज से उर्जा ग्रहण पठनीय और प्रभावी बनते हैं।

वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लघुकथा ने विषयवस्तु, भाषा और शिल्प के स्तर पर एक व्यवस्थित स्वरूप अख्तियार किया है। इसी व्यवस्थित स्वरूप के आलोक में लघुकथा को परिभाषित किया जाए तो प्रतिष्ठित समालोचक वंशीधर के शब्दों में– "लघुकथा जीवन प्रवाह के विशेष उर्मि आवर्त का सघन प्राणोष्म बिम्ब है। जिसमें जीवन के गतिशील क्षण अपने वृत्त में अर्थ–विशेष का प्रक्षेपण करते हैं ।"1

आज की लघुकथाओं में एक सजग रचनाकार की सामाजिक क्रियाशीलता का आवेग स्पष्टतौर पर दृष्टिगोचर होता है । विघटित और निर्मित होती सामाजिक संरचना को समझने में लघुकथा काफी मददगार सिद्ध हो रही है । यह सामाजिक जीवन की संवेदनात्मक चेतना के अनुपात के साथ अपने सरोकारों को पुरी जीवन्तता से विस्तार दे रही है।

लघुकथा न तो किसी सनसनीखेज घटना की प्रस्तुती है और न ही कोई समाचार यह एक ऐसी विधा है जिसमें न तो अनेक घटनाक्रमों गुंजाइश होती है और न ही पात्रों की भरमार । यह तो सुगठित आकार में अपनी गुणवत्ता के बल पर सम्प्रेषणीयता से मानवीय संवेदना को विस्तार देती है । यही कारण है कि कमलकिशोर गोयनका ने लघुकथा को जीवन की आलोचना के रूप में विश्लेषित किया गया है।

लघुकथा के उल्लेखनीय हस्ताक्षर कमल चोपडा की मान्यता के अनुसार–"लघुकथा आज के यथार्थ को ही अभिव्यक्त नहीं करती बल्कि भितरघातों और अमानवीय ताकतों के कारण बन रहे विषाक्त वातावरण में मनुष्य की संवेदना और गरिमा की तलाश की बेचौनी से भरी हुई है ।"2

समसामयिक जीवन में मानवीय संवेदना के समक्ष कई तरह की क्षुद्रताएँ और घिसी–पिटी परम्परा, चुनौती बनकर खड़ी है जिन पर आज के लघुकथा लेखक प्रहार करते हैं । यथा परिवार में आत्मीयता का अकाल, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, धार्मिक आडम्बर और अंधविश्वास, राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं प्रत्येक स्तर पर मूल्यों के क्षरण से चिक्षुब्ध जनता के भीतर सुलगते विद्रोह की आग की तपिश को लघुकथाकार सिद्दत से महसूस कर रहे हैं । अवधनारायण मुद्गल लघुकथा में सामाजिक परिवेश की पड़ताल करते हुए कहते हैं कि–"आज की हिन्दी लघुकथा में मामूली आदमी की संवेदना अपनी पूरी गहराई और इमानदारी से प्रस्फुटित हुई है और उसमें वर्ग भेद, सामाजिक विषमता तथा अन्याय के विशुद्ध आक्रोश का स्वर प्रतिध्वनित हुआ है ।"3

तात्पर्य यह है कि लघुकथा का जीवन्त हस्तक्षेप सामाजिक जीवन के भिन्न–भिन्न मुद्दों, स्थितियों और संदर्भो के साथ निरंतर जुड़ा रहा है । पिछले कुछ वर्षों से सामाजिक यथार्थ विभिन्न रूपों को उद्घाटित करने के लिहाज से लघुकथा विधा बहुत प्रभावशाली सिद्ध हो रही है । इसे पाठकों का भी भरपुर प्यार मिला है । केवल समयाभाव के कारण ही पाठक इसे नहीं अपना रहे हैं बल्कि लघुकथा की अपनी संप्रेषणीयता, सटीकता, कसावट और मारक तासीर पाठकों को अपनी ओर खींच रही है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी लघुकथा का सामाजिक परिदृश्य यथार्थ के बहुरंगी चित्रों से बना है । उसमें वर्तमान यथार्थ से जूझने, संघर्ष करने की क्षमता है तो नए यथार्थ का स्वप्न देखने की समाजोपयोगी ललक भी मिलती है । यहाँ हम विभिन्न लघुकथाओं के माध्यम से इस सामाजिक परिदृश्य का जायजा लेना अपेक्षित है ।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

विष्णु प्रभाकर की **'क्षमा'** लघुकथा में नर्सों से घृणा करने वाला युवक एक नर्स को पत्थर से घायल कर देता है । किन्तु कोयला–खान में विस्फोट के बाद वही युवक घायल होकर उपचार के लिए उसी नर्स के सामने लेटा है । नर्स उसे नहीं पहचानती । लेखक का मंतव्य इन पंक्तियों में छिपा है–"पत्थर के बदले में उसे स्नेह मिल सकता है, यह कल्पना करने में वह असमर्थ थाय लेकिन ज्यों ज्यों दीदी का स्नेह बढ़ता था, त्यों–त्यों उसके दिल में पत्सावे की आग तेज होती जाती थी ।"4

कोयले की खान में एक धमाके में घायल हुए एक युवा मजदूर को अस्पताल में लाए जाने पर यह जानते हुए भी किसी एक दिन उस पर पत्थर फेका था जिसका निशान अभी तक उसके मस्तक पर बना हुआ था, उसका वैसे ही सदय भाव से उपचार करती है । इस क्षमा से उस युवा मजदूर के भीतर की मनुष्यता जाग उठती है । उसका पस्तावा उसके मन के सारे कलुष को धो देता है ।

'फर्क'विष्णु प्रभाकर की बहुचर्चित लघुकथा है, जिसमें दिखाया है कि प्रकृति में पशु पक्षी कोई भेदभाव नहीं करते । किन्तु मनुष्य देश, धर्म, जाति आदि के आधार पर स्वार्थ और अहं की लकीरें खींचने को ही श्रेयस्कर समझता है । भारत और पाकिस्तान की सीमाएँ निश्चित हैं । एक देश का निवासी दूसरे देश की सीमाओं में प्रवेश करेगा तो प्रश्नों के काँटों से बाँध दिया जाएगा । परंतु बकरियों एक झुण्ड सीमा की परवाह किए बीना पाकिस्तान से हिन्दुस्तान चला आता है । इन्सान के लिए देशगत सीमाओं का बन्धन है, परंतु पशुओं के लिए देशगत सीमाओं के बन्धन बेमानी हैं । यह बात देखने में छोटी लगती है परन्तु प्रभाव इसका बड़ा है । यही वह बिन्दु है जो लघुकथा का महत्व, उसकी एक अलग पहचान स्थापित करता है । यही वह बिन्दु है जहाँ आदमी स्वयं को जानवर से बदतर जानवर पाता है ।

आदमी ही है जिसने मनुष्य–मनुष्य के बीच देश–जाति, नस्ल और रंग की दीवारें खड़ी की हैं, वरना जानवर तो यह फर्क करना नहीं जानते । मनुष्य पहले मनुष्य है, हिन्दु और मुसलमान बाद में है।

विष्णु प्रभाकर की रचना **'ईश्वर का चेहरा'** सामाजिक सदाशयता की सरल व श्रेष्ठ लघुकथा है । एक अस्पताल के एक ही वार्ड में प्रभा और सबीना एक–से रोग से पीडित हैं । प्रभा जानती है कि धरती पर उसकी छुट्टी समाप्त हो गई है । पर सबीना उसे बताती रहती है कि क्या क्या दवा खाने से उससे खराब हालत वाले भी खुदा के घर से लौट आए हैं । यह बताती है कि गरीबी के कारण उसने तो दवाएँ कभी नहीं ली, पर प्रभा तो ले सकती है । अपने दुःख को भूलकर बार–बार प्रभा के पास आ बैठती है और उसके शीघ्र स्वस्थ होकर घर जाने की कामना करती है । प्रभा सबीना की अपने प्रति चिन्ता और लगाव को देखकर सोचती है कि, "ईश्वर का अगर कोई चेहरा होगा तो वह सबीना के चेहरे जैसा होगा ।"5

सतीशराज पुष्करणा की **'दरिद्र'** लघुकथा में दो मित्र अपने एक मित्र से मिलकर लौटते हुए बात करते जा रहे है । उनका मित्र कुछ ही वर्षों में धनी हुआ है । एक मित्र बोलता है–"यह आदमी भी मुकद्दर का सिकन्दर है ।" इस पर दूसरा मित्र कहता है कि–"मगर बादशाह था, जिसमें संस्कार थे और वह अपनी गरिमा के अनुकूल ही अपने मित्रों का स्वागत करता था ।"6 दोनों मित्रों को यह शिकायत थी कि वे अपने उस मित्र के यहाँ घण्टेभर बैठे परन्तु उसने एक कप चाय पिलाकर टरका दिया और उस घण्टे में वह अपनी ही डिंगे हाँकता रहा कि– कीं और कैसे पैसा इन्वेस्ट किया है, क्या–क्या प्रोपर्टी किस–किस के नाम खरीद ली, भविष्य में ऐसा करना है, वैसा करना है । दोनों मित्रों को उसकी इन सब बातों से कोई मतलब नहीं था । वे तो बस यही सोच रहे थे कि जब उसका वेतन इन दोनों से कम था, और पहले वह इन लोगों से अक्सर पाँच–दस रुपए उधार माँगता रहता था, तो फिर इतनी कमाई के पीछे अवश्य ही गलत तरीका अपनाया गया होगा । वे उससे अधिक तनख्वाह पाकर भी बड़ी मुश्किल से अपना भोजन और बच्चों की पढ़ाई का खर्चा उठा पा रहे हैं ।

इस लघुकथा को दूसरे पहलू से देखा जाए तो वह यह है कि दुनिया ऐसी ही होती है । कोई भी किसी को आगे बढ़ता हुआ देखकर खुश नहीं होता है । तीनों मित्रों थे परंतु एक ने तरक्की कर ली, चाहे जैसे भी की हो, फिर इन दोनों मित्रों को उससे जलन क्यों हो रही थी ? वह तो उनसे भी धन जोड़ने के अपने अनुभव साझा कर रहा था, उनको तो डींग हाँकना क्यों लगा ? नास्ता करके आए थे, पेट भरा हुआ था, फिर भी यह शिकायत कि चाय के अलावा कुछ और नहीं पूछा । यह बात मानी जा सकती है कि उस धनी मित्र ने उनकी वैसी खातिरदारी नहीं की जैसी करनी थी, यह उसकी गलती थी, मगर उसको अनदेखा भी तो किया जा सकता था । मगर आजकल के जमाने का दस्तूर है, अपने मित्र के धनी होने से उन्हें बहुत ईर्ष्या हो रही थी, जिसकी भड़ास वे आपस में उसकी बुराई करके निकाल रहे थे ।

अंततः लघुकथा का तात्पर्य यह है कि आज समाज में वैचारिक दरिद्रता फैली है ।

सतीशराज पुष्करणा की **'भीतर की आग'** पत्रकार की कर्मनिष्ठा को अभिव्यक्त करती लघुकथा है । पत्रकारिता में डिप्लोमा प्राप्त करने के पश्चात् सुदीप के मन में एक आग है कि वह जान लगाकर पत्रकारिता का दायित्व निभायेगा । एक मर्डर केस की छानबीन के दौरान वह कई फोटो और सबूत इकट्ठा करके रिपोर्ट तैयार करके अपने सम्पादक को दिखाता है । सम्पादक पहले तो उसके कार्य से प्रसन्न होते हैं, उसकी स्मार्टनेश की प्रशंसा करते हैं, परन्तु जब रिपोर्ट में वे माफिया राधोसिंह के आदमियों के नाम देखते हैं तो सुदीप को बुलाकर उसे उनके खिलाफ कोई भी रिपोर्ट बनाने के लिए मना करते

हैं । वे कहते हैं कि इनकी पैठ राज्य के नेताओं तक है । ये लोग अखबार ही बन्द करा देंगे । जब सुदीप अपने पत्रकारिता के सिद्धांतों की बात करता है, तो वे उसे कहते हैं कि–''जो उसने पढ़ा था, वो केवल आदर्श था, अब उसे व्यावहारिक होना होगा ।''7 यह सुनकर सुदीप को बहुत गुस्सा आता है और वह क्रोधित होकर बिना कुछ कहे अपनी रिपोर्ट और फोटो उठाकर वहाँ से निकल जाता है, यह सोचकर कि यह नहीं तो कोई दूसरा या तीसरा अखबार उसे सच सामने रखने का मौका देगा । उसके अन्दर एक आग जल रही होती है– यही आग ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा की आग होती है । सच पूछा जाए तो इस आग के बगैर कोई भी कार्य बेकार है । यह आग ही हम इन्सानों के जीवित होने का प्रमाण होती है वरना सिर्फ साँसे लेने भर को ही जीवन जीना नहीं कहते ।

युगल की सामाजिक सरोकारों की लघुकथाएँ मुख्यतः यथार्थ के ही विभिन्न पक्षों को तीक्ष्णता के साथ सामने लाती है । उनकी निगाहें कथित आधुनिक सभ्यता में मानव–मूल्यों के क्षरण पर निरन्तर बनी रही है।

युगल की **'पेट का कछुआ'** इनकी बहुचर्चित रचना है । जिसमें एक अति निर्धन बन्ने के बारह साल के बेटे के पेट में कछुआ होने का पता चलता है । उसके इलाज के लिए पहले तो उसके पिता चन्दा जुटाने के लिए तत्पर हो जाते है, फिर यही कार्य व्यवसाय बन जाता है । लेकिन उस चंदे से उनका पेट भरने लगता है, तो बन्ना उसके आपरेशन का ख्याल मन से निकाल देता है । जब बेटा बन्ने को अपने दर्द और आपरेशन कराने की बात पूछता है, तो पिता के ये हृदयविदारक शब्द देखिए–"मुन्ने, तेरा क्या ख्याल है कि पेट चीरा जाकर भी तू बच जाएगा ? डॉक्टर भगवान तो नहीं । थोड़ा दर्द ही होता है न ? बर्दाश्त करता चल । यो जिन्दा तो है । मरने में कितनी देर लगती है ? असल तो जीना है ।''8 बेटे के पेट के कछुए से पिता के पेट की भूख का कछुआ जीत जाता है।

युगल की ही नामांतरणश लघुकथा मानवीय सम्बन्धों के बीच धर्म के बढ़ते हस्तक्षेप को बड़ी शिद्दत से उभारा है । एक अनजान लड़का एक घर में काम मांगता है । उसकी जिद पर स्त्री कुछ पूछताछ करती है । लड़के का नाम नूरल्ला है । वह इस शर्त पर उसे रखती है कि कोई पूछे तो अपना नाम नीरुलाल बताना । युगलजी ने अन्ध धार्मिकता के प्रसार के बावजूद समाज के उन हिस्सों की और भी संकेत करते हैं, जहाँ अब भी सम्भावनाएँ शेष हैं ।

सतीश दुबे की लघुकथा **'कत्ल'** में एक व्यक्ति का कत्ल हो जाने के बाद उस मुस्लिम बस्ती के तमाम लोग हैरान थे कि हसन साहब जैसे नेक इंसान का कत्ल किसने और क्यों किया ? उसकी शवयात्रा में शरीफ होने आए कुछ लोग चटखारे ले–लेकर बातें करते हैं, मानों कत्ल का दुःख उन्हें नहीं है, न ही शव–यात्रा में शरीफ होने की चिंता । एक आदमी आकर उन्हें कहता है–"आप कैसे बेगैरत हैवान दिल लोग हैं । अरे खुदा के बंदो, तुम्हारे महोल्ले में एक इन्सान की मौत हो गई है, उनका जनाजा–ताबूत बाहर आ रहा है, घर में बीवी–बच्चे चीख पुकर कर बेहोश हो रहे हैं और तुम उसी के अच्छे बुरे होने के मुताबिक चोंचे लड़ा रहा हो । धिक्कार और थू है तुम पर...''9

चित्रा मुद्गल की लघुकथा **'बोहनी'** में लेखिका अपने जीवन का ही संस्मरण प्रस्तुत करती सी लगती हैं । यह लघुकथा भी मुम्बई के सान्ताक्रुज स्टेशन के पास, पूल के ऊपर बैठे भिखारी की है । भिखारी भी भीख में बोहनी के अंधविश्वास को मानते हैं । लेखिका लोकल ट्रेन के लिए जाते हुए प्रायः जो एक सिक्का हाथ आता, एक बौने भिखारी के अंगोछ पर उछाल दिया करती । एक दिन उसके पास छोटा सिक्का नहीं था और वह बिना भीख दिए ही निकल गई । लेकिन एक–दो दिन जब लेखिका जल्दी या लापरवाही के कारण ऐसा नहीं कर पाई तो भिखारी की आवाज ने उसका पीछा किया । लेखिका के क्रोध करने पर वह बोला–"तुम देता तो सब देता... तुम नई देता तो कोई नहीं देता... तुम्हारे हाथ से बोनी होता तो पेट भरने के मिल जाता... तीन दिन से तुम नहीं दिया माँ... भुक्का है, मेरी माँ !''10 तात्पर्य यह है कि तमाम गरीबी हटाओं आन्दोलनों के बाद आज तक हम गरीबों को भरपेट भोजन और वस्त्र दे पाने में सफल नहीं हुए हैं । भिखारियों की अपनी दुनिया होती है और उनके भी शुभ–अशुभ संकेत होते हैं । उनके धन्धे भी अच्छी और बुरी 'बोहनीश का महत्व होता है । अतः लेखिका की संवेदना उसे सिक्का देने को मजबूर हो जाती है।

चित्रा मुद्गल की ही **'गरीब की माँ'** मुम्बइया खोली की कहानी लगती है । गरीबो के पास घर नहीं होता, और जो होता है वो घर के नाम पर किराए की खोली होती है । मलप्पा की गरीबी उसके झूठ और नाहक की चाभी है । मलप्पा गरीब होने के साथ ही सीधा भी है जो बार बार सेठानी से उधारी लेता है । किराया न चुका पाने पर अपनी माँ के कई बार मरने का बहाना बनाता है । शायद गरीब की माँ होती ही इसलिए है कि उसे मारकर भी यदि कोई काम बनता है तो बना लिया जाए । सेठानी मलप्पा के झूठे बहाने का मर्म भी शायद जानती है इसीलिए वह बार–बार उसे मौके देती है । सेठानी को मालूम है कि कभी–न–कभी तो मलप्पा उसका कर्ज चुकाएगा ही क्योंकि इसके अलावा उसके सामने कोई रास्ता नहीं है । अतः मराठी जीवन का रंग और वर्ग–चेतना का स्वर इस रचना को चमकदार बनाते हैं ।

तात्पर्य यह है कि चापलूस और अवसरवादी कर्मचारी का किरदार हर सरकारी, गैर–सरकारी कार्यालय में हमे आसानी से मिल जाएगा, जो बोस के आगे स्टाफ की चुगलियाँ करता है और स्टाफ के सामने आकर गिरगिट की तरह रंग बदलता है ।

असगर वजाहत की **'चार हाथ'** लघुकथा बताती है कि पूँजीपति के स्वप्न में भी सारी दुनिया का शोषण करने व

मुनाफा कमाने के ख्याल भरे रहते हैं । जैसे सारे संसार का मिल हो जाना, मिल में आदमी भी बनने लगना, मजदूरों के चार हाथ होना वगैरह । किन्तु वैज्ञानिकों ने प्रयोग करके बताया कि यह असंभव है । फिर पूँजीपति ने मजदूरों के हाथों में बाहर से कटे हाथ, फिर लकड़ी के फिर लोहे के हाथ फिट करने चाहे, लेकिन कुछ भी न हो सका । आखिर में उसने मजदूरी आधी करके दुगने मजदूर रख लिए । अतः इस लघुकथा के माध्यम से समाज के पूँजीपति लोगों की मानसिकता दिखाई है।

'आग' लघुकथा लघुकथाकार **भगीरथ** की समाजमूलक चेतना का परिणाम है । इस लघुकथा में एक शख्स जो मजदूरों को उनके अधिकारों के लिए संगठित करने का प्रयास करता है, उसे पूँजीपति वर्ग द्वारा अपने निहित स्वार्थों को सुरक्षित रखने की खातिर शहिस्त्र पशुश और श्नक्सलीश करार दिया जाता है । देश और समाज को लूटने वाला यह पूँजीपति वर्ग उलटे मजदूरों के बारे में कहता है "गुण्डा कहीं का, बेचारों को तबाह करने पर तुला हुआ है ।श्श11 छलावों की राजनीति की कुसंस्कृति आदिवासी किन्तु अनपढ़ और प्रकृति की गोद में जीवन बसर करनेवाले उन्मुक्त समाज में ऐसे विष बीज बो देती है, जिनसे उनके भीतर की संवेदना पत्थर के गुणधर्म में परिणत हो जाती है । ऐसे में उन्हें सत्पुरुष के चेहरे और व्यवहार भी खोटे और फरेबी लगने लगते है ।

लघुकथा **'सयानी लड़की' भगीरथ** की समसामयिक होकर मानो आज ही की घटनाओं को दुहराती मिलती है । सड़क, कॉलेज हो अथवा कोई भी आम स्थल, हर जगह लड़को की लड़कियों के साथ छेड़खानी प्रतिदिन की घटना हो गई है । तो क्या लड़कियाँ सड़क पर नहीं घूमें, फैशन नहीं करें, कॉलेज पढ़ने नहीं जाए ? इधर लड़कियाँ अपने साथ लड़कों द्वारा छेड़खानियों की खबरे माता पिता को देती हैं, तो माता–पिता उनके कॉलेज जाने, फैशन करने पर अंकुश लगाने के अलावा और कर भी क्या सकते हैं ? लड़की को छेड़नेवाले गुण्डों से उलझना एक अलग ढंग की आफत सिर पर लेना है । गुण्डों से उलझने का मतलब, गुण्डे से उलझनेवाले का गुण्डे, पुलिस, प्रशासन और समाज भुरता बना डालते हैं । तो क्या पुरुषत्व को त्यागकर गुण्डों की हरकते बढ़ने दे और समाज को अराजकता के सुपुर्द कर दे ? गुण्डों के आए दिन के अत्याचारों के खिलाफ लाख समाज एकजुट होकर नारेबाजियों का बुलन्द कर दे मगर सयानी लड़की का खयाल कर माँ–बाप अपनी चिन्ताओं को दरकिनार नहीं कर सकते । सयानी लड़कीश समाज की नींद पर दस्तक है, समाज को जगाने को उठाया गया एक बीड़ा है।

जगदीश कश्यप की ही **'लौटते हुए'** लघुकथा पढ़े–लिखे बेरोजगारों की पीड़ा को सहज रूप में व्यक्त करती है । इसमें एक युवक इन्टरव्यू से निराश होकर स्टेशन पर पहुँचता है । उसकी जेब में इतने पैसे भी नहीं कि टिकट भी खरीद सके और चाय–डबलरोटी भी । उसकी पीड़ा यह भी है कि घर पर माँ–भाई–भाभी की मेरी इस असफलता के बारे में क्या प्रतिक्रिया होगी । अंततः चाय, ब्रेड पीस और सिगरेट खरीदकर अपनी योजना बदल डालता है– "उसकी योजना थी कि वह बिना टिकट घर जाएगा । जाहिर था कि पकड़ा जाएगा और कैद हो जाएगी । चलो कुछ दिन तो घर के जहरीले माहौल से निजात मिलेगी ।"12 तात्पर्य यह है कि आज के समय में जो समाज में बढ़ रहे बेरोजगारी के कारण नवयुवानों अपना रास्ता कैसे बदल लेते है, उसको दर्शाया है ।

बलराम अग्रवाल की लघुकथा **'अपनी–अपनी जमीन'** दो बेटों के बीच विधुर पिता के फूटबोल बनने की कथा है । गाँव से शहर में बेटे के पास आए पिता को गाँव की स्मृति बेहतर सताती है । लेकिन बेटे को उसकी पत्नी कहती है कि लगता है पिताजी की नजरे मेरा पीछा करती है । पिता को एहसास हो जाता है कि उस पर संदेह किया जा रहा है । परंतु इसमें बहू द्वारा आरोपित गन्दा लाँछन पुत्र को आत्मग्लानि से भर देता है और पिता भी बहू के मन के चोर को समझ–भांपकर अपने गाँव लौटने का संकल्प लेता है । वे बीमार पड़ जाते हैं । ठीक होने पर धीरे से कहते हैं– "कहीं कुछ खनकता है तो... लगता है जैसे पकी बोलियों के भीतर गेहूँ खिलखिला रहे हैं... वैसी आवाज सुनकर अपना गाँव, अपने खेत याद आ जाते हैं बेटे ।"13 वास्तव में बहू नीता के पांजेबों में लगे धुंघरुओं की झनकार से उन्हें गेहूँ की बालियाँ याद आती थी।

अतः कथा अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है । यही मार्मिकता इस लघुकथा का प्राण है ।

'आदमी का बच्चा' लघुकथा **बलराम अग्रवाल** की सामाजिक यथार्थ को चित्रित करती है । एक खदान मजदूर अपने नवजात बच्चे के विषय में जानने के लिए पंडितजी के पास जाता है । जेब में रुपये पहुँचते ही पंडित जी पंचाग विचारने का नाटक करते हैं । इस नाटक का लेखक ने जो वास्तविक विवरण प्रस्तुत किया वह अद्‌भूत है । पंडितजी की घोषणा से मजदूर आशंकित होता है और अंततः पंडितजी की ऊँची भविष्यवाणी से परेशान वह कह उठता है– "शुभ शुभ बोलो पंडितजी! किसी कुत्ते का नहीं, इस आदमी का बच्चा है वो..."14 और वह आदमी एक खदान मजदूर है । उसका बच्चा बड़े ओहदे का स्वामी कैसे हो सकता है ।

यह लघुकथा हमें कटु यथार्थ से परिचित करवाती है और पंडितों के छद्‌म को भी उजागर करती है ।

पृथ्वीराज अरोड़ा की **'दुःख'** लघुकथा संदेश देती है कि दुःखों से भागना नहीं, संघर्ष करना ही जीवन है । एक घर में मुश्किल से दो वक्त का खाना पकता है । लेकिन घर की आर्थिक तंगी से परेशान होकर पिता घर छोड़कर चले जाते है । माँ सिलाई मशीन चलाकर किसी तरह घर चलाती है । इस कथ्य को लेकर चली इस लघुकथा का सार अन्त में इन शब्दों में होता है– "लगता है बेटे, दोनों ही दुःखों से डर

गए ।"15 कहते हुए माँ ने मशीन के रिंग पर ऊँगलिया रखकर उसे घुमा दिया । निर्धनता के कारण एक व्यक्ति घर छोड़कर कहीं चला जाता है । उसका बेटा अपनी माँ से उनके जाने का कारण पूछता है तो ह कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ की कथा उसे सुनाती है जो संसार में फैले दुःखों से दुःखी होकर एक रात अपनी पत्नी व बेटे को छोड़कर चला जाता है । दूसरी ओर उसका पिता धन के अत्यंत अभाव के कारण घर छोड़कर चला जाता है । लघुकथा अत्यन्त सशक्त है । दुःख विषय को लेकर चली यह रचना दुःख के कारण को खोजने में कामयाब है और अगर जीवन से बुझने की कोशिश करते हैं तो फिर दुःख अपने आप दूर हो जाता है । यह लघुकथा कथोपकथन शैली में लिखी गई है तथा उदाहरण प्रस्तुत करके, विषय की पुष्टि करती है । यह दुःख से भागना अनुचित है, इस और संकेत करती है ।

पृथ्वीराज अरोड़ा की ही **'अपनी बार'** लघुकथा मध्यम वर्ग के दोहरे मापदंड को उघाड़ती है । इस लघुकथा में यह दिखाया गया है कि जब हम किसी को कुछ देने की बात करते हैं तो अपनी विवशता की दुहाई देकर अपने रीति–रिवाजों को तोड़ने की बात करते हैं और जब अपनी बारी आती है तो हम रीति–रिवाजों को निभाने का पक्ष लेकर किसी से कुछ ग्रहण करने की कोशिश करते हैं । इस लघुकथा में एक बहन के घर दो लड़कियों के बाद लड़का होता है । बहन इस मौके पर मायके से कुछ लेना चाहती है किन्तु छोटी बहन रीति–रिवाजों को तोड़ने का पक्ष लेकर उसे कुछ देना नहीं चाहती । छोटी बहन उसे लिखती है कि हमें खुशी बहुत है, लेकिन सामान की जो सूची तुमने भेजी है, वह आर्थिक तंगी के चलते नहीं आ पाएगा । किन्तु अपनी बारी में वह दो साल बाद लड़का होने से कुछ लेना चाहती है और अपनी माँ से कुछ लेना चाहती है, वह लिखती है यह सामान जरुर आना चाहिए । बेशक "घर की हालत ठीक नहीं है परंतु किया भी क्या जाए, यह रीति–रिवाज निभाने ही पड़ते हैं ।श्श16 अंततः लघुकथा में दर्शाया गया है कि, जहाँ हमें लाभ होता है, हम उसके अनुसार सिद्धान्तों को तोड़ने या जोड़ने की बात करते हैं।

सूर्यकांत नागर की **'विषबीज'** लघुकथा में इसी का अहसास कराया गया है । यह रचना बताती है कि मध्य वर्ग के खोखले आदर्श और संकीर्णताएँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी चले आ रहे हैं । इस लघुकथा में एक पिता अपने बेटे को स्कूल–ड्रेस और बस्ता दिलाने एक दुकान पर ले जाता है । दुकान में रखे मटके को देख बच्चा एक–दो बार पानी के लिए कहता है, तो पिता यह कहकर की यह मुसलमान की दुकान हैश टाल जाता है । जब बेटा सवाल करता है कि "यह मुसलमान क्या होता है ?" या उसकी दुकान का पानी पीने क्या होता है ?ष्तो निरूत्तर पिता को अपनी भयंकर भूल का एहसास होता है कि–"मुलायम जमीन पर बबूल और थुहर बो दिए जाने का पाप मुझसे हो गया है ।"17

लघुकथा की प्रारम्भिक पंक्ति देखिए–"डोनेशन और झूठा बर्थ–सर्टिफिकेट देने के बाद नन्हे सन्दीप का स्कूल में दाखिला मिल गया ।"18 लेखक प्रकारान्त से व्यंग्य करता है कि मुसलमान का पानी पीने से धर्म भ्रष्ट होने का खतरा लगता है, पर झूठा बर्थ–सर्टिफिकेट देने से धर्म भ्रष्ट नहीं होता । अंततः यही मध्य वर्ग का पाखण्ड है और पाखण्ड सदा तर्क से परे होता है ।

अशोक भाटिया की **'रंग'** लघुकथा में होली की पृष्ठभूमि में एक अफसर के अहम् और सामाजिक सरोकारों के द्वन्द्व और अंततः सामाजिकता की विजय को दर्शाया गया है । इस लघुकथा का केन्द्रक व्यक्ति है, पर होली के दिन बेरंग होकर घर पहुंचने की व्यथा से पीड़ित होकर वह अकेले ही अपने चेहरे पर रंग लगा लेता है । होली जैसे सामाजिक और उत्सवी परिदृश्य में अहमीला अफसर पुराने कपड़ों में साइकिल से बाजार जाता है, फिर भी बेरंग हो घर पहुँचता है । सचमुच ऐसा हो जाता है– "श्रीनिवास एक खिसियानी हँसी हँसते कमरे में आ जाते हैं । रास्ते के रंग–भरे दृश्य एक–एक कर उनकी आँखों के आगे आने लगते हैं.... अचानक उन्हें लगता है कि वे कस्बे में सबसे अलग थलग पड़ गए हैं । वे उठते है और मेज पर रखे लिफाफे से गुलाल निकालकर अपने मुँह पर लगा लेते हैं ।"19 इसके विपरीत उसके मातहत कर्मचारी होली के रस–रंग में डुबे हुए है मातहतों की यह रस–रंग भरी सामाजिकता की दृश्यावली उसके अहन्ता अफसरत्व को तार–तार कर देती है । अहम् की इस अलग–थलग सी तरेर पर गुलाल की सामाजिक चाहत अफसर और मातहतों के कुनबे को खण्डित जमीन पर ला खड़ा करती है । विशिष्ट दिखने की अहमीली वैयक्तिकता, समाज से कटे होने का रीतापन और समाज के बीच जीने की रंग–भरी उत्सवी चाहत प्रश्नांकित करती है ।

अंततः भीतर के मनोविज्ञान को उकेरता है, व्यक्ति अलग–थलग अहन्ता को भीतरी त्रास से जोड़कर श्रंगश की चाहत को दर्शाता है । सामाजिक रंगों में व्यक्ति के इस बेरंगेपन की नियति खुद ही अकेले में रंग लगा देने की है । सामाजिकता के ये सहज रंग व्यक्ति की अहन्ता में कितने बेरंग हो जाते हैं । मगर रंग के लिए मचलते हैं । ये ही विरोधी रंगों के तन्तु इस लघुकथा की बुनावट को असरदार बनाते है ।

अशोक भाटिया की **'रिश्ते'** मार्मिक लघुकथा है, जीवनभर एक ही मार्ग पर बस दौड़ानेवाले बस–ड्राइवर सरूप सिंह एक दिन बस को बहुत धीमी गति से चला पाता है । वह बार–बार बस को सवारियों को, तो कभी बाहर पेड़ों को देखता जाता है । जिसकी निगाहों में एक–एक पेड़ स्मृति के रूप में बसा है और नौकरी के अन्तिम दिन नम आँखों से देखते–देखते बस की रफ्तार धीमी हो गई है । घर जल्दी पहुँचने की यात्रियों की त्वरा और स्मृतियों में खोए ड्राइवर की ढीचम–ढीचम रफ्तार को कण्ट्रास्ट भरे तनाव में रच देता है ।

ड्राइवर खोया है रास्ते के रिश्तों में और सवारियाँ ड्राइवर को कोसती है, और विरोध करने पर वह बस रोककर कहता है– "बात यह है कि इस रूट से मेरा तीस साल का रिश्ता है । आज मैं आखिरी बार यह बस चला रहा हूँ । बस के मुकाम पर पहुँचते ही मैं रिटायर हो जाऊँगा, इसलिए... ।"20 पर उसका उत्तर चलचित्र की तरह रास्ते के रिश्तों गीली दृ श्यावली को अन्तिम दिन को सामने ला देता है, जहाँ ड्राइवर की ढीचम–ढीचम सवारियों की त्वरा को भी ठंडा कर देती है । अशोक भाटिया हर कहीं किसी पठार और पहाड़ी कैनवास के फूटते हुए झरनों को इस तरह ले आते हैं कि रिश्तों की संवेदना असरदार बन जाती है, और सामान्य से ड्राइवर में चारित्रिक संवेदन और रिश्तों के गीलेपन को इस तरह उभार देते है कि ड्राइवरीय जिन्दगी का आखिरी पड़ाव भी एक अदना चालक में सवारियों की सुरक्षा और रास्ते की दृश्यावली के गहरे रिश्तों को मर्म दे जाता है।

निष्कर्ष

समाज से जुड़ी लघुकथाओं में सामाजिक परिदृश्य, यथार्थ के बहुरंगी चित्रों से बना है । उसमें वर्तमान यथार्थ से जुझने, संघर्ष करने की क्षमता है तो नए यथार्थ का स्वप्न देखने की समाजपयोगी ललक भी मिलती है । विभिन्न लघुकथाओं के माध्यम से इस सामाजिक परिदृश्य का जायजा लिया गया है । सामाजिक सम्बन्धों का पारदर्शी चित्रण लघुकथा की ताकत है । पाखंड, जमाखोरी, पूँजीवादी मनोवृत्ति आदि से उत्पन्न विसंगतियों को उजागर करती है । साथ में मानवीय सद्भावना और मूल्यों के पोषक और संरक्षण का गुरुत्तर दायित्वभाव सहेजे हुए आज लघुकथा सामाजिक परिदृ श्य के प्रति सजग है ।

संदर्भ सूची

1. 'संरचना', डॉ. कमल चोपडा, पृ. 75
2. वही, पृ. 78
3. संरचना–10, डॉ. कमल चोपडा, पृ. 79
4. विष्णु प्रभाकर, संपूर्ण लघुकथाएँ, पृ. 20
5. विष्णु प्रभाकर, संपूर्ण लघुकथाएँ, पृ. 61
6. सतीशराज पुष्करणा की "66 लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल९ (सं.) मधुदीप, पृ. 114
7. वही, पृ. 120
8. युगल, किरचें, पृ. 42 9.
9. सुरेश जांगिड़ उदय (सं.), सतीश दुबे की श्रेष्ठ लघुकथाएँ, पृ.14
10. अशोक भाटिया (सं.), पैसठ हिन्दी लघुकथाएँ, पृ. 117
11. भगीरथ, पेट सबक हैं, पृ. 23
12. जगदीश कश्यप, कोहरे से गुजरते हुए, पृ. 23
13. बलराम अग्रवाल, सरसों के फूल, पृ. 17
14. बलराम अग्रवाल की 66 लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल, सं. मधुदीप, पृ. 120
15. अशोक भाटिया (सं.) पैंसठ हिन्दी लघुकथाएँ, पृ. 122
16. महावीर प्रसाद जैन (सं.) श्समग्रश्–लघुकथांक, 1978, पृ. 71
17. सूर्यकान्त नागर, विषबीज, पृ. 13
18. वही, पृ. 13
19. अशोक भाटिया, अंधेरे में आँख, पृ. 39
20. अशोक भाटिया, अंधेरे में आँख, पृ. 38

RRIJM 2015, All Rights Reserved